धन्य गुरु !
धन्य शिष्य !
जन्म जयंती
विशेषांक

APRIL - 2026

वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

गुरु - शिष्य विशेषांक

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

धन्य गुरु !! धन्य शिष्य !!

पूज्य गुरुदेवश्रीकी १३७वीं मंगल जन्मजयंतीके अवसर पर उन्हें कोटि कोटि वंदन

हे गुरुदेव! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानो विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ! अरे! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्रने इतना सरल कर दिया!

– पूज्य सोगानीजी

(पत्रांक–१७, कलकत्ता / २५–७–१९५४)

पूज्य श्री सोगानीजीकी ११५वीं जन्मजयंती पर उन्हें कोटी कोटी वंदन

'ये सब रागसे अंदर प्रभु भिन्न है!' ऐसा कहा और ध्यानमें बैठे! अंदरमें घोलन करते.. करते... करते... रागसे भिन्न चैतन्यका अनुभव यहाँ समितिमें हुआ था। बाद में सारी जिंदगी बहुत अच्छे संस्कार लेकर स्वर्गमें चले गये! आहा..हा...! बहुत शक्ति थी! 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' है न! उसमें बहुत है! ...वहाँ से (स्वर्ग से) निकलकर बादमें दूसरे भवमें केवलज्ञान पाकर मोक्ष हो जायेगा! ...वहाँ स्वर्गमें भी आत्मामें ठरते हैं। परंतु थोड़ा राग है तो मनुष्यभव पाकर, केवलज्ञान पाकर, रागका नाश होकर मुक्ति होगी!!

– पूज्य गुरुदेवश्री

(श्री 'समयसार कलश टीका' कलश–२१६ के प्रवचनमें से, प्रवचन नं. २४१)

ऐसे धन्य गुरु !! धन्य शिष्य !! को

उनके जन्मजयंतीके पावन अवसर पर 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवारके कोटि–कोटि वंदन

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५२, अंक-३४०, वर्ष-२८, अप्रैल-२०२६

कहानरत्न किरणें!!

– अध्यात्म युगसृष्टा
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
('परमागमसार'में से साभार उद्धृत)

ओहो हो! आत्मा तो अनन्त विभूतियोंसे मंडित अनन्त गुणोंकी राशि, अनन्त गुणोंका विराट पर्वत है। वह सर्वांग पूर्ण गुणमय ही है, उसमें एक भी अवगुण नहीं। ओहो! "यह मैं" – ऐसे आत्माके दर्शनके लिए जीवने कभी सच्चा कौतूहल किया ही नहीं। ३३६

*

प्रश्न :– आत्माकी महिमा कैसे आवे?

उत्तर :– आत्मवस्तु ज्ञानस्वरूप है, यह ज्ञायक तो अनन्त गुणोंका पिण्ड है, यह अखण्ड पूर्ण तत्त्व त्रिकाल अस्तिरूप है। इसका स्वरूप–इसकी सामर्थ्य अगाध और आश्चर्यकारी है; जिसे समझे (भाव–भासन हो) तो आत्माकी महिमा और माहात्म्य आवे व रागका माहात्म्य छूट जाए। आत्मवस्तु कैसे अस्तित्ववाली है, कैसी सामर्थ्यवाली है? इसका स्वरूप रुचिपूर्वक खयालमें ले तो इसका माहात्म्य आवे और राग व अल्पज्ञताका माहात्म्य छूट जाए। एक समयकी केवलज्ञानकी पर्याय, तीनकाल–तीनलोकको जाननेकी सामर्थ्यवाली है, तो भी वह प्रतिक्षण नयी–नयी उत्पन्न होती है, तो उसके धारक त्रिकाली–द्रव्यकी सामर्थ्य कितनी? इस प्रकार आत्माके आश्चर्यकारी स्वभावको यथार्थतः खयालमें ले तो आत्माकी महिमा आवे। ३३७

*

अहो! इस मनुष्यगतिमें ऐसे परमात्मस्वरूप मार्गकी आराधना करनेका प्रारंभ करना, यह तो जीवनकी कोई धन्य पल है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञायक ही है – ऐसा भावमें आए। चाहे जैसे प्रसंगमें भी मैं ज्ञायक हूँ ... मैं ज्ञायक हूँ ... यही भाव रहा करे, ज्ञायकका ही लक्ष्य रहे तो उस ओर ढ़लना होता ही रहे। ३३८

*

प्रश्न :- आत्मा प्राप्त करनेके लिए सारे दिन क्या करना?

उत्तर :- सारे दिन शास्त्रका अभ्यास करना, विचार-मनन कर तत्त्वका निर्णय करना और शरीरादि व रागसे भेदज्ञान करनेका अभ्यास करना। रागादिसे भिन्नताका अभ्यास करते-करते आत्माका अनुभव होता है। ३३९

*

व्यवहारनय उपचरित अर्थको बतानेवाला होनेसे अभूतार्थ है। सम्यग्दर्शनके विषयभूत त्रिकाली ज्ञायकभावरूप अभेदमें भेद नहीं होने पर भी व्यवहारनय उसमें भेद बतलाता है, अतः उसे असत्यार्थ कहनेमें आता है। व्यवहारनय त्रिकाली ज्ञायक-भावको छोड़कर ज्ञायकभावमें नहीं है ऐसे भेदोंको - पर्याय आदिको प्रकट करता है, इसीलिए अभूतार्थ है। पर्यायको गौण कर, व्यवहार रूप बतलाकर, व्यवहारको झूठा बतलाया है। ३४०

*

जैसे घने धुएँकी आड़में चूल्हे पर रखा हुआ लापसीका भगोना (तपेली) नहीं दिखता, वैसे ही पुण्य-पापके प्रेमरूपी धुएँकी आड़में ज्ञायकभाव दिखाई नहीं देता। पर्यायबुद्धि वालेको रागमें रस है - रुचि है, जिससे अन्तरमें विराजमान सकल-निरावरण वीतराग मूर्ति ढ़की रह जाती है। प्रबल कर्मके संयोगसे ज्ञायक-भाव तिरोभूत हो जाता है। तो भी ज्ञायक-भाव तो ज्ञायक भाव ही है, वह तिरोभूत नहीं होता। परन्तु प्रबल रागके संयोगसे अर्थात् रागकी रुचि और प्रेमके कारण ज्ञायक-भाव नहीं दिखाई देता, जिससे तिरोभूत हुआ है। ३४१

*

आनन्दधन प्रभु और रागके मध्य सन्धि है। वे निःसन्धि हुए ही नहीं, क्योकि चैतन्य आनन्द प्रभु - ज्ञायकतत्त्व - और शुभाशुभ राग, ये दो भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। ये दो एक रूप नहीं होने पर भी आत्मा और कर्म, अर्थात् आत्मा और रागमें विवेक नहीं करनेवाले - भिन्नता नहीं करनेवाले - शुभ भावमें विमोहित हो जाते हैं। ३४२

*

ज्ञायक-भाव और रागको पृथक न करनेवाले जीव व्यवहारसे विमोहित हैं, अर्थात् शुभराग करते-करते लाभ प्राप्तिकी मान्यतावाले हैं। शुभोपयोग साधन हैं, व शुद्धोपयोग साध्य है, ऐसी मान्यतावाले रागमें लाभ माननेसे व्यवहारसे विमोहित हृदय हैं, तथा आत्मा और रागको एक मानते हैं।

चैतन्यस्वभावको भूलकर रागके कर्तृत्वमें बह जानेसे, रागसे विमोहित हुए जीव पर्यायमें जो अनेकरूप-विश्वरूप-भाव प्रकट हैं, उन रूप ही आत्माका अनुभव करते हैं। ३४३

*

ज्ञायक ध्रुव-नित्यानन्द प्रभुको देखनेवाले भूतार्थदर्शी हैं, पर शास्त्रको जाननेवाले अथवा एक समयकी पर्यायको देखनेवाले भूतार्थदर्शी हैं - ऐसा नहीं कहा। पूर्णानन्दके नाथ प्रभुको निज-बुद्धिसे अर्थात् स्व-चैतन्य-ओर ढ़ली हुई ज्ञानदशारूप मतिज्ञान द्वारा, भगवान ज्ञायक स्वरूप है; और राग आकुलता स्वरूप है - ऐसा दोनोंका विवेक - भेद-विज्ञान करके वे अन्तर पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकको आविर्भूत कर आत्माका ज्ञायक रूपसे अनुभव करते हैं। ३४४

*

अखंण्ड आनन्दका नाथ प्रभु है, जो उसे जाने बिना ही गुण-गुणीके विकल्पमें मग्न हैं - वे व्यवहारमे ही मग्न हैं। ज्ञान है सो आत्माका है - ऐसे लक्षण-लक्ष्यके विक्लपोंमें रुके हुए हैं, तब तक व्यवहार ही में मग्न हैं। संसारके पाप भावोमें, अथवा दयादान आदि भावोंमें अटके हुओंकी बात तो दूर, पर लक्षण-लक्ष्य और गुण-गुणीके विकल्पोंमें भी अटके रहने तक वे व्यवहारमें ही मग्न हैं। ३४५

*

राग-द्वेषरूप विकार-भाव, राग-द्वेषकी परिणति दुःख है। उससे मुक्त होनेकी इच्छावाले मोक्षार्थी पुरुषको सर्वप्रथम क्या करना? - कि आत्माको जानना। यह तो चैतन्य रत्नाकार है। आत्मा चैतन्य-रत्नों से भरपूर है, विकारकी वृत्ति उससे भिन्न है। पुण्य-पाप रूप विकरोंसे भिन्न होकर सर्वप्रथम ज्ञायक सच्चिदानन्द प्रभुको जानो। ३४६

*

मोक्षार्थी पुरुष याने?-कि अनन्त-सुख प्राप्ति और अनन्त दुःखके व्ययका अर्थी। परम आनन्द-लाभका अर्थी पुरुष - कि जो जगतका यश, कीर्ति, धन अथवा स्वर्गका अर्थी नहीं है - वही मोक्षार्थी है। जो एक मात्र पूर्णानन्दकी प्राप्ति और रागद्वेषके दुखके व्ययका अर्थी है, वही मोक्षार्थी है। ३४७

*

सर्व प्रथम क्रिया कौन-सी? - कि सर्व प्रकारके भेदज्ञानमें प्रवीण होना ही सर्व प्रथम क्रिया है।

''द्रव्य तो त्रिकाली और निरावरण है,'' पर वर्तमान पर्यायमें रागादिको मिश्रित कर रखा है। तो भी भेदज्ञानकी प्रवीणतासे, ''राग-दशाकी दिशा पर-ओर है व ज्ञान-दशा स्व-ओर है''- ऐसे दो दशाओंके मध्य प्रज्ञाछैनी लगानेसे - भिन्नताका अनुभव हो सकता है। ३४८

*

इस प्रकार सर्व प्रकारसे भेद-ज्ञानकी प्रवीणतासे क्या होता है? - कि ''यह अनुभूति है, सोही मैं हूँ''; लेकिन व्यवहार रत्नत्रयका राग है सो मैं नहीं : ऐसे आत्मज्ञान होता है। ज्ञान लक्षणसे लक्षित चैतन्यस्वभावका अनुभव होने पर ''यह अनुभूति ही मैं हूँ'' ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है। ३४९

*

यह मनुष्य-भव मिला है सो भवका अभाव करनेके लिए मिला है, पैसा कमानेके लिए यह भव नहीं मिला, इसीलिए मृत्युके पूर्व ही आत्मकल्याणका यह कार्य कर ले। ३५०

*

सम्यग्दर्शनका लक्षण क्या कहा? - कि भेद-ज्ञानकी प्रवीणतासे आत्मज्ञान द्वारा आत्माको जैसा जाना है, वैसा ही प्रतीतिमें आना - वही सम्यग्दर्शनका लक्षण है। ज्ञानमें पूर्णानन्द अभेद-अखंण्ड आत्माका ज्ञान होने पर जैसा आत्मा जाना वैसी ही प्रतीति होने पर सम्यक्श्रद्धान प्रकाशित हो उठता है। ३५१

*

परमात्मा फरमाते हैं कि प्रभु! तेरे ज्ञानकी पर्यायमें सदैव स्वयं आत्मा स्वयं ही अनुभवमें आता है। ज्ञानकी प्रकट दशामें सर्वको भगवान आत्मा अनुभवमें आता है।

''अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा'' अनुभवमें आने पर भी तूँ उसे नहीं देखता। क्यों? - इसलिए कि पर्यायबुद्धिके वश हो जानेसे परद्रव्योंके साथ एकत्वबुद्धिके कारण स्व द्रव्यको नहीं देख सकता। ३५२

*

गुरु और शास्त्र तो दिशा बतलाते हैं कि रागादिरूप तूँ नहीं अतः वहाँसे दृष्टि हटा, और ध्रुवमें दृष्टि लगा। क्योंकि स्थिर वस्तुमें दृष्टि स्थिर हो सकती है, अस्थिर

वस्तुमें दृष्टि स्थिर नहीं हो सकती। ध्रुव स्थिर वस्तु है, वह स्वयंके परिणाममें भी नहीं आती। अतः उस पर दृष्टि देनेसे दृष्टि स्थिर होती है, अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है। इस प्रकार शास्त्र और गुरु दिशा दिखलाते हैं, पर करना तो स्वयं अपनेको है। इसके बिना जन्म-मरणका अन्त नहीं आने वाला। ३५३

*

(पृष्ठ संख्या १९से आगे...)

हैं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। अर्थात् जो भिन्न है उसका हर्ष-शोक करना उचित नहीं है। जो अशरण है, असार है,-सारभूत नहीं है या सुखरूप नहीं है और जो अनित्य है ऐसे पदार्थोंके पीछे लगे रहनेसे तेरे हाथमें क्या आयेगा? बारह भावनामें ऐसा प्रश्न उठाया है। जो अनित्य है, असार है, अशरणभूत है और सुखस्वरूप नहीं है ऐसे पदार्थोंके पीछे लगे रहकर तेरे चैतन्यकी गुण-सम्पत्तिकी हानि होती है। तुझे क्या प्राप्ति करनी है? अरे! हानि होती है, कुछ प्राप्त करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। ये सबप्रकारके समाधानयुक्त सम्यग्दृष्टिका परिणमन है। उसे बारह भावना कहते हैं। अनेक प्रकारके बाहरके सभी पहलूके जो न्याय हैं इसका समन्वय परिणमनमें चलता है। न्यायका विचार करने नहीं बैठना पड़ता, न्यायके विकल्प करने नहीं बैठना पड़ता। ऐसा परिणमन ही होता है। अतः सब कुछ रस रहित रस-कस रहित, *'रस बिना...'* रस-कस बिना(का लगता है!)

मिथ्यात्व अवस्थामें जो भरा-भरा लगता है वही सब सम्यक् अवस्थामें खाली-खाली लगता है- इतना फ़र्क है। आदमी क्या कहता है? कि ये घर भरा-भरा लगता है। 'गुरुदेवश्री' एकदम, काठियावाडी भाषामें बोलते थे 'कहळ्युं कुटुम्ब!' क्या? 'कहळ्युं कुटुम्ब' कहते थे। अच्छी तरह फैला हुआ, कोई कमी न हो वैसा। बेटोंकी संख्या, बेटियोंकी संख्या, भाइयोंकी संख्या, बहनोंकी संख्या... सबकुछ सप्रमाण मात्रामें हो, अच्छा खासा हो। जिसे कहते हैं न कि कुटुम्बका वंशवृक्ष अच्छी तरह फैला हुआ हो इसे 'कहळ्युं कुटुम्ब' (है) ऐसा कहा जाता है। यहाँ कहते हैं कि तुझे सब भरा-भरा लगता है, ज्ञानीको वह शून्यवत् लगता है, कहीं भी मैं नहीं हूँ। मेरे से सब शून्य है और मेरा किसीमें सद्भाव नहीं है, अभाव है। - ऐसी वस्तुस्थितिका भान जो है वही कहींपर भी जीवको मिथ्यारसकी उत्पत्ति होने नहीं देता।

आम लोगोंको लगता है कि, यदि जीवनमें रस न हो तो ऐसा जीवन किस कामका? (तो कहते हैं कि) भाई! उसे चैतन्यकी महिमा और चैतन्यका निराकुल रस, शान्त रस, अमृतरसका भीतरमें वेदन चल रहा है। वही उसका जीवन है और वही उसका परिणमन है। बाहरी सब आकुलताका रस उन्हें खत्म हो चुका है। दुःखरस मिटा है, अपितु सुखरस तो भीतरमें अच्छी तरह प्रकट हुआ है।

*

(प्रवचनांश... श्री'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल -३२, दि. १६-१२-८६, प्र.क्र.-२८, 'अध्यात्म सुधा' भाग-१, पन्ना -४०८,४०९)

अहो ! पूज्य गुरुदेवश्री की निस्पृहता !!

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

... गुरुदेवश्रीमें यह प्रकार हमने देखा था। पुण्ययोग इतना अधिकतर था कि हज़ारो अनुयायी आते थे। राजा-महाराजा, सेठ-सेठिया लोग आते थे लेकिन किसीकी दरकार नहीं। किसीसे कोई लगाव नहीं, अपने ज्ञान-ध्यानके समयमें तो कोई आसपास भटक ही नहीं सकता। कोई हमलोग जैसे कभी चले जाते वह एक अलग बात है। वरना किसी दूसरेको इज़ाज़त नहीं देते थे। कोई यदि अकस्मात आ जाता तो वह दर्शन करके निकल जाता या तो भीतर आने ही नहीं देते। कहा जाता कि वे फिलहाल ज्ञान-ध्यानमें हैं। फिर भी अगर कोई इनके एकान्त स्थानमें आ जाये तो यूँ (हाथ दिखाकर) जाने को कह देते।

दर्शन करके यदि कोई बैठ जाये तो ऐसी चेष्टा कर देते, मुँहसे बोलते नहीं। बहुत एकान्त प्रिय थे। इतने-इतने लोग आते थे फिर भी खुद बहुत एकान्त-प्रिय थे। बस, दो बार प्रवचन दे दिये, इससे अतिरिक्त आपको चर्चाका समय दे दिया अब और क्या चाहिये? फिर आपका काम तो आपको करना है न? तीन घंटे दे दिये और क्या चाहिये? खुद अपना काम करे कि नहीं? किसीसे कोई लगाव नहीं चाहे कोई कितना भी दान देवें इसका कोई consideration (गिनती) नहीं। कभी उसकी प्रशंसा नहीं। कि यह भाई काफ़ी दान देते हैं, ऐसा कुछ नहीं। वरना एक-दो मुमुक्षु परिवार ऐसे थे कि प्रभावनाके कार्यमें अच्छा खासा दान देते और हमेशा खड़े ही रहेंगे। सबसे आगे रहते। उनलोगोंने निश्चय कर रखा था कि गुरुदेवकी प्रभावनाके कार्यमें हमें बहुत समर्पण करना...

...आगे रहकर इसप्रकार प्रभावनाके कार्यमें अग्रेसर रहनेवालोंकी भी गुरुदेवश्रीने कभी प्रशंसा नहीं की। जैसे ये लोग बहुत दान देते हैं हं! ये लोग बहुत प्रभावना कर रहे हैं, ऐसा कभी नहीं बोले। दान दे रहे हैं इसलिये अधिक response देना सो बात ही नहीं। कि यह भाई दान अधिक दे रहे हैं इसलिये उसे ज्यादा response देना सो बात भी नहीं। वे इतने अधिक निस्पृह थे। ट्रस्टकी क्या गतिविधि है कुछ नहीं देखते थे। कभी कुछ पूछते ही नहीं थे। कौतूहलवश भी नहीं पूछते थे कि कितने पैसे इकट्ठे हुए? कुछ नहीं। कभी-कभार बात की हो तो अलग बात है कि, इसने पैरमें इतनी बड़ी रकम रख दी ऐसे।

पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य भाईश्री

हमारे एक मारवाडी थे। प्रतिष्ठा महोत्सवके दौरान एक ब्रीफकेसमें पचास हज़ारके नोट लेकर आये। उस जमानेमें पचास हज़ारकी रकम बड़ी गिनी जाती थी। साहेब! ये आपके चरणोंमें अर्पण। तो कह दिया ऑफिसमें दे दो जाओ। (हाथकी चेष्टा कर देते) इसे ऑफिसमें जमा कर दो। खुद हाथ भी नहीं लगाते थे। नोटोंके बंडल थे अंदरमें। कोई प्रभाव नहीं, इतने निस्पृह थे। कोई आओ, न आओ कुछ नहीं। किसी को कहते नहीं थे कि आप रुक जाईये। एक टंक (एक और प्रवचन) रुक जाओ। कलका व्याख्यान बहुत सुंदर आनेवाला है या दोपहरमें व्याख्यान बहुत बढ़िया आयेगा इसलिये सुनकर बादमें जाना ऐसा नहीं कहते। क्यों? कि सुननेकी ग़रज़ या सुननेकी महत्ता तो आपको होनी चाहिये। इसमें कहनेका क्या? ये इनके वैराग्यकी निशानी है।

(प्रवचनांश... श्री'स्वानुभूतिदर्शन' प्रश्न-४४५,४४६, दि. २०-२-९९, प्र. क्र.-३८७)

*

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्री तो मंत्र दे गये हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ! ज़हर उतारनेके मंत्र ही हैं सारे। वास्तवमें ऐसा है। मोहका ज़हर उतार दे ऐसे मंत्र दिये हैं। हितबुद्धिसे इतना निश्चय कर ले कि मुझे मेरा हित कर लेना है, ऐसी हितबुद्धिपूर्वक यदि इस विषयमें अनुसरण करे, इन वचनोंका अमलीकरण करे तो नियमसे हित होवे ही होवे, नहीं होनेका सवाल नहीं। यह guaranteed बात है। यानी कि अवश्य होगा ही होगा, नहीं होनेकी गुंजाईश नहीं।

(प्रवचनांश.. श्री'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-१८०, दि. १७-८-१९८७, 'अध्यात्म सुधा' भाग-५, पन्ना-२५०, प्र.क्र.-१३५)

*

मुमुक्षु :- इस कालमें तो गुरुदेवश्रीने बताया सो महान उपकार!

पूज्य भाईश्री :- सो तो एक बड़ी आश्चर्यकारी घटना घटी है। यह काल इतना निकृष्ट है; ऐसे हीन परिणामी जीवोंकी उपस्थिति है, कहते हैं कि ऐसे महापुरुष तो बहुत बड़े भाग्यसे भी नहीं पा सकते फिर भी हमलोग नसीबवाले हैं। वास्तवमें नसीबवाले तो हमलोग हैं कि हमारी विद्यमानताके कालमें हमें इनके प्रत्यक्ष सत् समागमका अवसर मिल गया।

(प्रवचनांश.. श्री'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-१६६, दि. १८-७-१९८७, 'अध्यात्म सुधा' भाग-५, पन्ना-११, प्र. क्र.-१२२)

पूज्य बहिनश्रीके हृदयमेंसे प्रवाहित गुरु गुण सँभारणा

शास्त्रोंमें भरे गहन भावोंको खोलनेकी पूज्य गुरुदेवकी शक्ति कोई गजब की थी। उन्हें श्रुतकी लब्धि थी। व्याख्यानमें निकलते गंभीर भाव सुनते हुए कईबार ऐसा लगता कि यह तो क्या श्रुतसागर उछला है! ऐसे गंभीर भाव कहाँसे निकलते हैं? गुरुदेवकी जैसी वाणी कहीं नहीं सुनी। उनकी अमृतवाणीकी झंकार कितनी मीठी थी! ऐसा लगता सुनते ही रहें। अनुभवरससे सराबोर गुरुदेवकी ज़ोरदार वाणीकी ललकार कोई अलग ही थी। पात्र जीवका पुरुषार्थ जगाये और मिथ्यात्वको चूर-चूर कर दे ऐसी दैवी उनकी वाणी थी। हमारा सौभाग्य है कि गुरुदेवकी यह मंगलमय कल्याणकारी वाणी टेपमें उतर गई और जीवंत रह गई, गुरुदेवने बहुत स्पष्ट करके बताया है। गुरुदेवका परम उपकार है, मैं तो उनका दास हूँ। गुरुदेवने इस मुमुक्षु समाज पर अपार उपकार किया है। ६८.

*

गुरुदेवका तो परम उपकार है। देव-शास्त्र-गुरुकी महिमापूर्वक चैतन्यकी परिणति अंदरसे प्रगट करनी चाहिये। ज्ञायक, ज्ञायक ज्ञायकका पुरुषार्थ और इसकी स्वानुभूति ही प्रगट करने जैसी है। उसका निरंतर अभ्यास, उसकी लगन और उसका वारंवार प्रयत्न करना चाहिये। गुरुदेवने तो चारों पहलुओंसे मार्ग दर्शाया है। इतना स्पष्ट करके बताया है कि, कहीं भूल न रह जाये। परंतु पुरुषार्थ तो खुदको ही करना है। ६९.

*

गुरुदेव तो सहज प्रतापी पुरुष थे, उनके प्रतापसे चारों तरफ स्वानुभूतिके मीठे सुर बजते रहते हैं। यहाँ चारों तरफ गुरुदेवकी शीतल छाया छा गई है। यहाँ तो भगवानकी, जिनेन्द्रमंदिरोंकी और गुरुदेवकी मंगल छायामें जीवन बीत रहा है। जगतमें ऐसे गुरुदेवका सान्निध्य मिलना मुश्किल है। गुरुदेव जहाँ विचरे हो वह भूमि का मिलना मुश्किल है। गुरुदेवका सान्निध्य और उनकी मंगल प्रभा जहाँ फैली हो, यह सब मिलना मुश्किल है। सम्यक्मार्गप्रकाशक कृपालु गुरुदेवका अपार उपकार है। ७०.

*

गुरुदेव ने फरमाया है कि एक ज्ञायकको पहचानो। गुरुदेवने बहुत सुनाया है, मैं क्या बोलूँ? गुरुदेवका परम उपकार है, इस भरतक्षेत्रमें चैतन्यका पूरा स्वरूप गुरुदेवने समझाया है। इस पंचमकालमें, इस विषमकालमें गुरुदेवका जो जन्म हुआ, यह महाभाग्यकी बात है। गुरुदेव यहाँ पधारें और 'चैतन्य कोई अपूर्व है' ऐसी इसकी अपूर्वता बताई, उसकी ओर अंतरदृष्टि करने की (बात) समझाई, यह गुरुदेवका परम उपकार है। ७१.

*

पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन और तर्कसंगत न्याय इतने रसकससे भरपूर कि इसके अलावा दूसरा सब बिलकुल फीका-फीका ही लगे, इसलिये मुझे अंदरसे कहीं रस आता ही नहीं। इसीमें जीवन एकमेक हो जाये। पूज्य गुरुदेवश्रीके अंतरको स्पर्श करती हुई वाणी और कहाँ से मिले-? उनकी भाषा भी जैसे अलग ही लगे। एक ही एक गाथा भी जब सुने तब नये-नये भाव, नई-नई स्पष्टता ही निकलती रहती। ७६.

*

पूज्य गुरुदेवकी गरजती वाणी; ऐसी दिव्यध्वनि कई बरसों तक बरसाई इसके जैसा और क्या सौभाग्य! जीवोंको द्रव्यदृष्टि मिली। सब जीव क्रियामें पड़े थे, वहाँसे यहाँ लाये। तेरे नेत्र खोलकर इस तरफ देख! इस तरफ झुक जा। यह एक ही करना है। वहीं पहुँचना है। तेरे पास ही है। कहीं ढूँढ़ने जाना पड़े ऐसा नहीं है। तुम ही हो... वह कैसा रत्नाकर है, यह सब बतलाया। सबको द्रव्य पर पहुँचा दिया.... सब अपनी शक्ति अनुसार करते हैं। ७७.

* ('गुरु-गुण-सँभारणा'में से साभार उद्धृत...)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अप्रैल-२०२६, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
स्व. श्री डोलरराय जमनादास हेमाणी, (पुणे) की
पुण्यतिथिके अवसर पर उनके परिवार
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

धन्य गुरु !! धन्य शिष्य !!

शिष्यरत्न पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचन्द्रजी सोगानीजी प्रति पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रमोदपूर्ण आशीर्वचन !!

शशीभाई! यह आपके (संकलित किये हुए 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश') – पुस्तकमें से यह सब निकाला है – विरोध किया है, देखो! 'लालभाई' और इन्होंने – दोनों ने मिलकर लिखा है कि नहीं? यह पुस्तक–यह 'सोगानी'का 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'! दिया है कि नहीं? दिया है। 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'! इन दोनों ने मिलकर बनाया है। ये ('शशीभाई') और 'लालचंदभाई'। ये पढ़कर वे ('सरदारशहर'वाले) भड़के! ये कौन निकला? कि, हमें दुःख लगता है, भट्टी लगती है! अरे... ऐसा! बापू! जब तक पर्यायमें वीतरागता नहीं तब तक वीतरागीपर्यायका अंश भी है और रागका अंश भी है। एक पर्यायके दो भाग हैं। इसलिये दुःखका वेदन है। क्योंकि बंधनके निमित्तरूप भाव – राग और दोष हो सकते हैं। आ..हा..हा...! जिस भावसे तीर्थंकरगोत्रका बंध हो वह भाव भी दुःखरूप है, बंध का कारण होता है न? बंध का कारण होता है न! बंध के कारणसे धर्म हो सकता है?

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–१००, दि. १०–०८–७५, प्र.–११५, ३४:३० मिनट पर)

'चक्रवर्ती छः खंडको नहीं साधते, अखंडको साधते हैं।' 'सोगानी'में ('द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में) है न?

(श्री निहालचंद्रजी सोगानीने) यह (सोनगढ़में) समकित पाया था। यहाँ हमारे पास आये।

अन्यका – योगी-जोगी – सभीका अभ्यास बहुत किया। शास्त्रका अभ्यास करते-करते भी कहीं भी (आत्माका) पता न लगा, तो यहाँ आये। आये तो (मैंने) इतना कहा : भाई! ये विकल्प, जो दया-दान आदि के उठते हैं उनसे प्रभु तो अंदर भिन्न है। आहाहा ! 'सोगानी'। उनका 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'! ...यहाँ कमरेमें, यहाँ रसोईघरमें (-समितिके कमरेमें) आत्मध्यानमें समकित हुआ। (मैंने) इतना कहा कि : 'राग से भिन्न 'प्रभु' अंदर है।' तो पूरी रात – शाम से लेकर सुबह तक ध्यान लगाया। रागसे भिन्न, रागसे – विकल्पसे भिन्न करते-करते सुबह होनेसे पहले निर्विकल्प सम्यग्दर्शन लेकर उठे! बहुत शक्ति थी... बहुत! आखिरमें शांतिसे देह छोड़कर स्वर्गमें चले गये।

('श्री समयसार' गाथा-३२०, दि. ३०-०७-७९, 'प्रवचन नवनीत'-भाग-१, पन्ना-२३४)

...भाईमें नहीं आता है? 'सोगानी'में! 'सोगानी'में एक लेख है कि, 'महाराजने कहा सो मैंने किया है। अब मुझे दूसरेको कुछ कहना (नहीं है)।' (किसी ने ऐसा कहा कि), 'ये आप (गुरुदेवश्री को) कहो।' (तो उन्होंने कहा) 'यह कोई मेरा स्वभाव नहीं। ऐसा मेरा भाव नहीं।' है न? उसमें कहीं आता है। 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'! 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में है न? भाई! कि, 'आप महाराजको जाकर कहिये तो सही!' (तो कहा कि), 'देखो भाई! वह तो मेरे स्वभावमें है नहीं। ऐसा लक्ष्य करके जाऊँ सो मेरे (स्वभावमें) नहीं है।' आ..हा..हा...! आता है कहीं पर, 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में!

जिज्ञासा :- जाना चाहिये कि नहीं जाना चाहिये?

समाधान :- जाने, नहीं जाने की बात ही कहाँ है? खुदने तो जो जाना सो जाना। उसे अब दूसरोंको बताकर क्या काम है कि, मैं जानता हूँ!

श्रोता :- गुरु का उपकार मानने तो जाना चाहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उपकारमें तो व्यवहार विकल्प आता है। इसलिये वह तो कहा न कि, अंदरमें हुआ तब निमित्तका उपकार है ऐसा कहनेमें आता है।

(पूज्य 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-४२८, दि.३१-०१-७९, प्र.-१७९, ३६:१० मिनट पर)

('धन्य पुरुषार्थी' में से साभार उद्धृत...)

द्रव्यदृष्टि व गुरुभक्तिका समन्वय श्री सोगानीजी !!

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

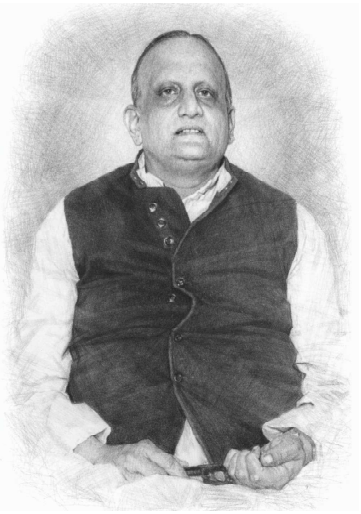

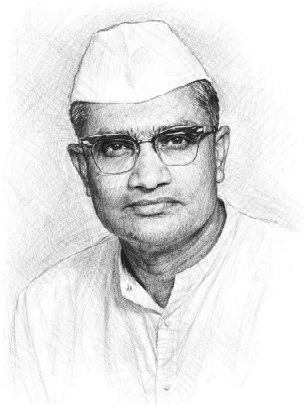

'श्री सोगानीजी'ने indirect speech में एक बहुत सुंदर बात की है कि, पहले ऐसा लगता था कि, मोक्ष तो बहुत बड़ी बात है, मोक्ष पाना सो तो बहुत बड़ी बात है। 'गुरुदेव'की भक्ति करते-करते, महिमा करते-करते (कहते हैं कि) हे गुरुदेव! आपके वचन सुननेके पश्चात् मोक्षकी बात तो बहुत आसान-सी लगने लगी है! क्योंकि मोक्ष तो मैं पानेवाला हूँ। मोक्ष पाना इसमें क्या बड़ी बात है! सो तो एक समयकी पर्याय है, इसके सामने देखना कौन चाहेगा? ऐसी सहज बात कर दी। कैसे कर दी? कि, 'मैं भगवान हूँ, मैं भगवान हूँ...' ऐसे निज भगवानका भजन पर्याय करने लगी तो इससे मोक्षकी बात तो साधारण-सी (आसान) हो गई! ये मोक्षकी इतनी कठिन सी बात इतनी ज्यादा सरल-सामान्य हो जाएगी-ऐसा सोचा न था। ऐसे भावपूर्वक ऐसे वचन लिखे हैं, बहुत भाववाही रूपसे लिखे हैं! आपके वचनोंका चमत्कार तो देखिये! ऐसा कहते हुए वास्तवमें तो उन्होंने भक्ति की है और अनेकों जगह जहाँ-जहाँ सिद्धांतकी और मूल द्रव्यकी बात उन्होंने की है उसमें कभी पहले या कभी बादमें उस बातको 'गुरुदेवश्री'के नाम उन्होंने चढ़ाई है। गुरुदेव ऐसा फरमाते हैं या मुझे यह बात गुरुदेवश्रीसे मिली है। 'गुरुदेव'ने जो कहा उसका सार मैंने यह ग्रहण किया है। ऐसा कहकर बातको गुरुके नाम चढ़ा दी है। ऐसे स्वाभाविकरूपसे सभी पत्रोंमें भक्तिपूर्वक सारी बातें आई हैं। परमशुद्ध निश्चयकी बातें आई हैं। भक्ति और विनय असाधारण! परम विनय और परम भक्ति सहित पूरा प्रतिपादन हुआ है।

हालाँकि उन्हें तब कहाँ पता था कि उनके पत्र पुस्तकारूढ़ होंगे। कुछ तो उन्होंने फाड़ डाले थे! पता चला कि मेरे पत्र एकत्रित किये गये हैं और सँभालकर रखे हैं तो कुछ फाड़ डाले! ये क्या? काग़ज़को सँभालकर ये सब चर्चा वगैरह सब क्या है? जब पता चला कि मेरे काग़ज़ पर यहाँ (सोनगढ़में) चर्चा चलती है तो थोड़े बहुत हाथ लगे उसे खुदने फाड़ डाले। ये सब चर्चा कर-करके क्या प्रसिद्ध करना है? प्रसिद्धिमें न आनेके लिये पहले से ही दूरी बनाके रखते थे। लिखते समय तो यह पता नहीं था कि, यह पुस्तकारूढ़ होंगे, परन्तु उनकी वाणीमें स्वाभाविकरूपसे जितने ज़ोरसे निश्चयका विषय निकला है इतनी ही भक्ति साथ-साथ बाहर आ गई है। यह एक संकेतरूप है कि,

(अंतरंग अध्यात्म) दशा और भक्तिकी साथ-साथ रहनेकी कैसी कुदरती परिस्थिति होती है! यह निश्चयके साथ इतना सुमेल है।

(प्रवचनांश... श्री'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-३०, दि. १४-१२-८६, प्र. क्र.-२६, 'अध्यात्म सुधा' भाग १, पन्ना क्र.- ३७९,३८०)

*

एक बहुत लाक्षणिक पद्धतिसे 'सोगानीजी'ने एक पत्रमें लिखा है कि, हे विकल्प! अब तो तू शांत हो! भले ही पेशेसे व्यापारी थे परन्तु उनकी शैली लेखक जैसी थी! (लिखते हैं कि) हे विकल्प, तू शांत हो जा यानी कि मर जा ऐसा कहते हैं। और अगर तुझे शान्त न होना हो, और जीवित रहना हो तो मुझे श्रीगुरुके चरणमें ले जा! क्या कहा? हे विकल्प! (यदि) तुझे जीना हो तो तू मुझे सद्गुरु-श्रीगुरुके चरणोंमें ले जा। वरना श्रीगुरुने ऐसा शस्त्र मुझे दिया है कि तेरी मौत हो जायेगी। तू नहीं जी सकेगा। यदि तुझे थोड़ा समय जीवित रहना हो तो फिरभी एक स्थान है, एक उपाय है, एक जगह अवकाश है कि तू मुझे श्रीगुरुके चरणमें ले चल। दूसरा विकल्प तो तू होना ही मत ऐसा कहते हैं। बहुत निश्चयप्रधान भाषा थी, दृष्टिका ज़ोर भी बहुत था, फिर भी भक्ति भी ऐसी ही थी! यह एक विशेषता है! उनके पत्रोंमें यह बहुत विशेषता है।

(प्रवचनांश... श्री'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-१८, दि. ५-१२-८६, प्र.क्र.-१८, 'अध्यात्म सुधा' भाग १, पन्ना -२४८,२४९)

पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी की ११५ वीं जन्मजयंती महोत्सव प्रसंग पर सुवर्णपुरी सोनगढ़ में धार्मिक कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र ऐसे पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की आगामी ११५ वीं जन्मजयंती उनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी में दि.२५-०४-२०२६ से दि.२७-०४-२०२६ त्रिदिवसीय धार्मिक कार्यक्रम सहित अत्यंत आनंद उल्लासपूर्वक मनाने का निश्चित किया गया है। यह धार्मिक कार्यक्रम सोनगढ़ स्थित 'गुरुगौरव' स्मारक में मनाया जायेगा।

इस प्रसंग पर प्रातः पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा (आश्रम में), जिनदर्शन तथा पूजन जिनमंदिर में, पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, तत्पश्चात् पूज्य भाईश्री शशीभाई के 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' ग्रंथ पर 'गुरुगौरव' स्मारक में प्रवचन, दोपहर में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, बादमें पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद 'गुरुगौरव' में, रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में और 'गुरुगौरव' स्मारकमें भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा।

दि.२७-०४-२०२६ पूज्य सोगानीजी के जन्मजयंती दिन पर पूज्य भाईश्री के प्रवचन के बाद जन्मवधामणा एवं भक्ति का कार्यक्रम रहेगा।

इस प्रसंग पर सभी मुमुक्षु भाई-बहनों को पधारने का हार्दिक निमंत्रण है।

आयोजक : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर

अखंडके साधक !!

पूज्य निहालचन्द्रजी सोगानी संबंधित हृदयोद्गार !!

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

'निहालभाई'ने तो तत्त्वकी बात एकदम स्पष्टरूपसे खुल्ली कह दी है। शुभभावमें, भक्तिमें, क्रियामें इससे लाभ माने ऐसा काल नहीं रहा। अभी तो कोई पुण्यसे धर्म नहीं मानता। क्रियाकांड धर्मका साधन नहीं है। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रतापसे तत्त्वकी धुन जमी है। (दि. ४-९-७४)

*

प्रश्न :- पूज्य 'निहालभाई' कहते हैं कि, षट् आवश्यक नहीं परन्तु एक ही आवश्यक है।

उत्तर :- क्रियाकांड, उपवास, व्रत, तप इत्यादि से सामान्य जीव मानते हैं कि, इससे (धर्म) हो गया, तो वह बात झूठ है। आवश्यक एक है इसकी उन्होंने अपनी धुनमें संधि की है। सब किया इसलिये ज्यादा लाभ हुआ वैसा नहीं है। अंदरमें यदि कुछ नहीं हुआ और शास्त्र स्वाध्याय आदि करे तो इससे नुकसान नहीं है परन्तु अपनी मान्यता ऐसी हो जाय कि, कुछ कर लिया तो नुकसान है। कुछ होता नहीं यह सोचकर सब छोड़ दे तो यह गलत है, वास्तवमें तो अंदर (में) करना है। पूज्य गुरुदेवश्रीने भेदज्ञानका मार्ग स्पष्ट किया है। अभी तो भेदज्ञान... भेदज्ञान... इसकी समझका काल आया है।

*

'निहालभाई'की कथन शैलीमें भाषा कड़क है परंतु वस्तुस्थिति तो बराबर कही है। वे कैसे दिखते थे, किसीको खास परिचय नहीं था और बोलते भी कम थे इसलिये दूसरोंको बाहरसे ख्याल नहीं आवे। उनकी अंतरकी परिणति निराली थी। जीवके अंतरंग परिणामोंको बाहरसे नहीं नापा जा सकता। उन्होंने वस्तुस्थिति सत्य कही है। मार्ग सत्य कहा है जिसे ग्रहण करना चाहिये।

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में कहा है न...! 'पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, में किसका ध्यान करुँ?' यह ठीक कहा है। द्रव्यको कहाँ ध्यान करना है? वास्तविक स्थिति वस्तुकी यही है, जैसी है वैसी कहते हैं। किसीको भाषा कड़क लगे तो क्या हुआ? अंतरंग परिणति तो निराली ही थी।

*

('धन्य पुरुषार्थी' में से साभार उद्धृत...)

पूज्य सोगानीजीके श्रीमुखसे प्रवाहित
पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति हृदयोद्‌गार

महाराजश्री, चिन्मय, भव्य दिव्यमूर्ति, गरजती हुई दिव्यमूर्ति, परम कृपालु, परम पूज्य, परम अद्‌भुत, जीवन उद्धारक, जन्म-मरणरूपी रोगसे रहित करनेवाले योगीराज, अनादि अनंत आयुके धारक चैतन्य, परम कृपालु उपकारी, सर्वश्रेष्ठ नेता (मोक्ष मंडलीके), मुक्तिदूत, अलौकिक सत्पुरुष, पूज्य परम उपकारी, हे भगवान, परम पूज्य महान योगी, आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता, हे प्रभो, साक्षात् चैतन्यमूर्ति, ज्ञानानंदी गढ़, वीतरागप्रधानी, ज्ञान आनंदकी खान, अपूर्व सत्पुरुष, अलौकिक पूज्य, सर्वस्वके देनेवाले परम उपकारी, परम निर्भय सिंहस्वरूप, तीर्थंकरसे भी अधिक सत्पुरुष, मुक्तिनाथ, परम पिताश्री।

पूज्य सोगानीजीका भक्तिसभर पत्र
(पत्रांक-४)

कलकत्ता

२१-६-१९५२

आत्मार्थी...प्रत्ये निहालचन्द्रका धर्मस्नेह!

आपका कार्ड अजमेरसे लौटकर यहाँ आया, कारण मैं अधिकतर आजकल यहाँ ही रहता हूँ। योग कुछ ऐसा ही है कि आर्थिक संबंधकी अपेक्षा प्रत्यक्ष तौर पर मेरा धार्मिक संग इस समय दूर-सा हो रहा है और मैं बहुत समयसे सोनगढ़ नहीं आ सक रहा हूँ। यह कहना व्यर्थ है कि अंतरंगमें, यहाँ होते हुए भी मुझे वहाँकी स्मृतियाँ, ऐसा कोई दिन न होगा कि नहीं आती रहती होवे। पूज्य गुरुदेवकी स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखोंमें गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है। उनका असंगरुचिका उपदेश (अथवा स्वसंगका) कानोंमें गूँजता रहता है और उसकी रमणतासे ही यहाँ की उपाधियाँ ढीली-सी रहती हैं। उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरणोंमें शीघ्र अपने आपको पाऊँ।...

आशा करता हूँ कि आपकी परिणति स्वस्थ्य होगी। पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें मेरा सादर भक्तिपूर्वक नमस्कार और सब भाइयोंसे धर्मस्नेह।...

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र सोगानी

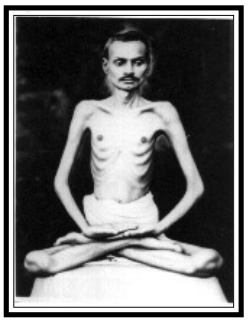

- परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक - ४००

बंबई, श्रावण वदी, १९४८

वह पुरुष नमन करने योग्य है,
कीर्तन करने योग्य है,
परमप्रेमसे गुणगान करने योग्य है,
वारंवार विशिष्ट आत्मपरिणामसे ध्यान करने योग्य है,
कि
जिस पुरुषको द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे
किसी भी प्रकारकी प्रतिबद्धता नहीं रहती।

आपके बहुतसे पत्र मिले हैं, उपाधियोग इस प्रकारसे रहता है कि उसकी विद्यमानतामें पत्र लिखने योग्य अवकाश नहीं रहता, अथवा उस उपाधिको उदयरूप समझकर मुख्यरूपसे आराधते हुए आप जैसे पुरुषको भी जानबूझकर पत्र नहीं लिखा, इसके लिये क्षमा करने योग्य है।

जबसे इस उपाधियोगका आराधन करते हैं, तबसे चित्तमें जैसी मुक्तता रहती है वैसी मुक्तता अनुपाधिप्रसंगमें भी नहीं रहती थी; ऐसी निश्चलदशा मगसिर सुदी ६ से एक धारासे चली आ रही है।

आपके समागमकी बहुत इच्छा रहती है, उस इच्छाका संकल्प दीवालीके बाद 'ईश्वर' पूर्ण करेगा, ऐसा मालूम होता है।

बंबई तो उपाधिस्थान है, उसमें आप इत्यादिका समागम हो तो भी उपाधिके आड़े आनेसे यथायोग्य समाधि प्राप्त नहीं होती, जिससे किसी ऐसे स्थलका विचार करते हैं कि जहाँ निवृत्तियोग रहे।

लीमडीके ठाकुरसंबंधी प्रश्नोत्तर और विवरण जाना है। अभी 'ईश्वरेच्छा' वैसी नहीं है। प्रश्नोत्तरके लिये खीमचंदभाई मिले होते तो हम योग्य बात करते। तथापि वह योग नहीं हुआ, और वह अभी न हो तो ठीक, ऐसा हमारे मनमें भी रहता था।

आपके आजीविका-साधनसंबंधी बात ध्यानमें है, तथापि हम तो मात्र संकल्पधारी हैं। ईश्वरेच्छा होगी वैसा होगा। और अभी तो वैसा होने देनेकी हमारी इच्छा है।

परमप्रेमसे नमस्कार प्राप्त हो।

*

जिन्होंने परमसुखस्वरूप, परमोत्कृष्ट शांत, शुद्ध चैतन्यस्वरूप समाधिको सदाके लिये प्राप्त किया उन भगवंतको नमस्कार, और जिनका उस पदमें निरंतर ध्यानरूप प्रवाह है उन सत्पुरुषोंको नमस्कार।

- श्रीमद् राजचंद्र (पत्रांश-८३३)

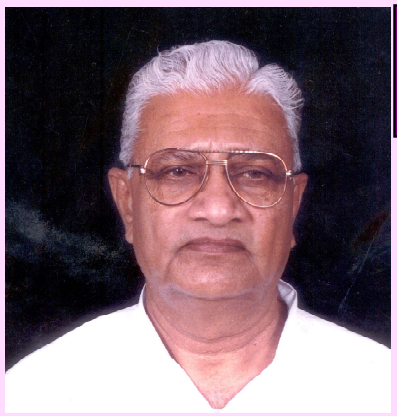

हे जीव ! वास्तविकतामें आ जाओ !

– सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

ये भावनाएँ आती हैं न? बारह भावना! एक अशरण भावनामें जो है उसमें ऐसी एक बात आती है कि, जो पदार्थ तुझे शरणभूत नहीं हैं, मूलमें तो जीव परपदार्थका आश्रय क्यों लेता है? कि, मुझे इसका आधार है। पैसेका मुझे सहारा है, सगे–सम्बन्धीका सहारा है, घर–मकान, इज्जतका मुझे सहारा है। तो कहते हैं कि, मृत्युका समय जब आया तो तब तुझे क्या शरणभूत हुआ? कि, कोई पदार्थ तुझे शरणभूत नहीं है। कब? सिर्फ मृत्युके समय ही शरणभूत नहीं है क्या? अरे! पहले से ही कोई शरणभूत नहीं थे। परन्तु ये सब मुझे शरणभूत हैं, इसका सहारा और आश्रय है ऐसी जो मान्यता है वह मृत्युके समय आघातरूप होती है। इसका आघात लगता है। किसका आघात है? मृत्युका आघात है क्या? नहीं। तूने जो आश्रय लिया था उसका आघात है, वास्तवमें ऐसी बात है। जो झूठा आधार लिया उसका आघात है। ज्ञानियोंको कुछ नहीं होता। वे तो समझते हैं कि, मानो जैसे कपड़े बदले हो। जैसे पुराने वस्त्र जर्जर हो जाते हैं, जीर्ण हो जाते हैं तब आदमी खुशी–खुशी नए वस्त्र पहन लेता है। ये फट गये हैं अब जीर्ण हो चुके हैं इसे छोड़ दो। नए अच्छे सिलवाकर पहन लो। तो उसवक्त क्या वह रोने लगता है क्या? कि अरेरे... मेरे वस्त्र पुराने हो गये, बल्कि वह तो समझता है कि, इस पर्यायका पूर्ण होनेका काल आ गया, शरीर जर्जर हो चुका है या जर्जर (नहीं हुआ हो तो भी) इस पर्यायकाल पूर्ण होनेको आया, अब नए वस्त्र आयेंगे। न तो पुराने छोड़नेका खेद कर्तव्य है, नाहि नए अंगीकार करनेका हर्ष कर्तव्य है। क्योंकि दोनों ही तुमसे तो भिन्न–भिन्न

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या ७ पर...)

'द्रव्यद्रष्टि प्रकाश' नई आवृत्ति जिज्ञासुओंके लिए भेंट

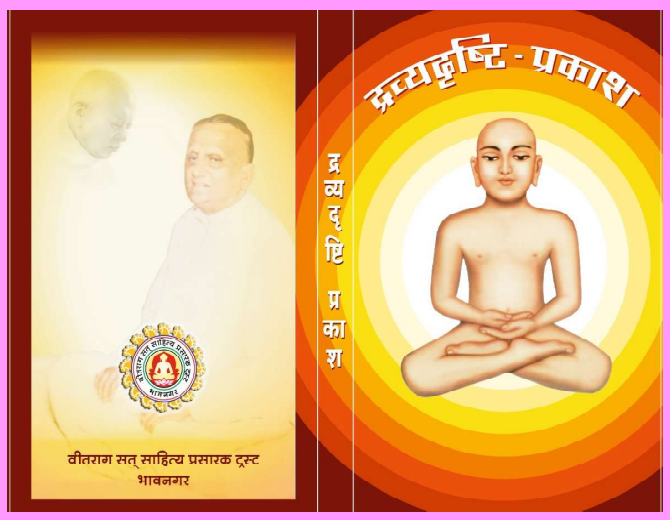

पूज्य निहालचंद्र सोगानीजीके ११५ वे मंगलकारी जन्मोत्सवकी खुशहालीमें वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

'द्रव्यद्रष्टि प्रकाश'

की प्राप्ति हेतु....

संपर्क

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा, मोः ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

... दर्शनीय स्थल...

'गुरु गौरव'

सोनगढ़

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर एस्टेट, बारडोलपुरा, अहमदाबाद - ३८० ०१६ से मुद्रित एवं १९४२ - बी, शशीप्रभु मार्ग, रूपाणी, भावनगर - ३६४ ००१ से प्रकाशित ।

संपादक : श्री नीरव धर्मेन्द्र वोरा - 98250 52913

mayur process 9374825041

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

Printed Edition : **3485**
Visit us at : http://www.satshrut.org